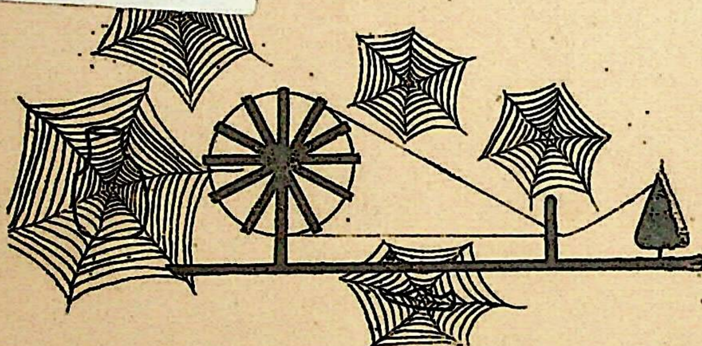
ओ३म्

और खादी



डा० कान्ति किशोर भरतिया

एम० ए०, पी-यच० डी०

आशीर्वचन :

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

आ. पु.
पा. म. वि.

ओ३म्

वेद और खादी

लेखक
डॉ० कान्ति किशोर भरतिया
एम० ए०, पी-एच० डी०
संस्कृत विभाग,
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर



आशीर्वचन
राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

प्रकाशक : ग्रामोद्योग मण्डल
१५/२३९ सिविल लाइंस,
कानपुर



प्रस्तावना लेखक : श्री धर्म प्रकाश गुप्त

मुद्रक : उदय प्रिंटिंग प्रेस, सूटरगंज, कानपुर-१

मूल्य : १ रुपया

प्रथम संस्करण । १९७७

आशीर्वचन

वेदों में चरखा

औध के पडित सातवलेकरजी ने १९२२ में हिन्दी में वेद में चरखा नामक एक पुस्तक लिखी थी और जब मैं यरवडा जेल में आराम कर रहा था, तब उन्होंने कृपा करके मुझ उसकी एक प्रति भेजी थी। यहाँ ग्रथकार द्वारा उद्धृत ऋग्वेद १०।५३।६ का, जिसे कातने और बुनने वालों का मूल मंत्र कहा जा सकता है, स्वतन्त्र अनुवाद दिया जाता है :—

"सूत कात कर उसे चमकदार रंग देकर गांठों के बिना बुनलो और इस प्रकार उन लोगों की रक्षा करो जो ज्ञानियों ने अंकित किये हैं, और अच्छी तरह विचार करके आने वाली सन्तानों को दिव्य ज्योति का मार्ग दिखाओ या ग्रंथकार के अनुवाद के अनुसार दिव्य संतान उत्पन्न करो। सचमुच कवियों का यही काम है।

अगर अनुवाद कुछ भी सही है ....और लेकक ने केवल अपना ही अनुवाद नहीं दिया है, बल्कि अपनी पुस्तिका में ग्रिफिथ का अनवाद भी उद्धृत किया है तो इस मंत्र से न केवल यह साबित होता है कि वैदिक काल में कताई का अस्तित्व था, परन्तु यह भी प्रमाणित होता है यह छोटे मे छोटे और ऊँचे से ऊँचे स्त्री पुरुष दोनों का धंधा था। यह उन मार्गों में से एक था जिन्हें ज्ञानियों ने तैयार किया था और जिनकी रक्षा करना कवियों का काम था। जब मैंने हमारे कवि सम्राट् के सामने यज्ञ के रूप में नम्रभाव से चरखा

पेश किया था, तब मुझे क्या मालूम था कि मेरे पीछे सबसे प्राचीन समझे जाने वाले वेद का प्रमाण हैं ?

जो लोग इस प्राचीन और पवित्र उद्योग तथा कला का पुनरुद्धार करने के काम में लगे हुए हैं उन सब से मैं इस मंत्र की सिफारिश करता हूँ। यज्ञार्थ कताई करते समय वे इस मंत्र का विचारपूर्वक जप करें। वे उसे अपने हृदयों में अंकित करके रखे और अपनी आगे कूच में निराशाए और हार होने पर भी अपनी श्रद्धा अविचलित रखे। इस पुस्तिका में से एक और सुन्दर मंत्र उद्धृत किये बिना मैं नहीं रह सकता। वह मी ऋग्वेद १०।१३०।१ में से है उसका अर्थ यह है :—

"यज्ञ में एक सौ एक कलाकार कलाकार काम कर रहे हैं और वह लाखों धागों द्वारा पृथ्वीतल पर फैला हुआ है यहाँ बुजुर्ग संरक्षक उपस्थित है। वे इन प्रक्रियाओं को ध्यान से देख रहे हैं और कह रहे हैं—

'यहाँ बुनो, वहाँ वह सुधारो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस प्राचीन काल में कताई और बुनाई को यज्ञ माना जाता था और बुजुर्ग उसकी सावधानी से रक्षा करते थे। ग्रंथकार ने प्रचुर प्रमाणों से सिद्ध किया है कि कताई और बनाई स्त्री पुरुष दोनों करते थे : वास्तव में यह उद्योग उतना ही सार्वत्रिक था जितनी खेती।

यंग इण्डिया — महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधी

२ जून, १९२७



प्रस्तावना

मेरे आत्मीय मित्र और स्थानीय डी० ए० वी० कालेज के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डा० कान्ति किशोर भरतिया ने जब 'वेद और खादी' विषय पर पुस्तक लिखने का अपना विचार व्यक्त किया तो मुझे प्रसन्नता हुई। विषय के महत्व को देखते हुए मैंने उन्हें अपने विचार यथासम्भव शीघ्र कार्यरूप में परिणित करने के लिये उत्साहित किया।

वेदों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये संसार के प्राचीनतम धर्म ग्रंथ एवं सत्य ज्ञान की अनन्य निधि हैं। इसमें खादी पर जितना विशद और सम्यक् रूप से प्रकाश डाला गया है वैसा अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं है।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के महान् सेनानी और अध्यात्मिक महापुरुष राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश की सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक क्रान्ति के लिये जिस रचनात्मक कार्यक्रम पर निष्ठात्मक अमल किये जाने का आग्रह किया था उसमें अहिंसा के प्रतीक के रूप में चरखे द्वारा कताई या खादी का सर्वोपरि स्थान था। इसे उन्होंने यज्ञ की संज्ञा दी थी। अपने कथन की पुष्टि करते हुए बापू ने ऋग्वेद, १०।५३।६ का प्रमाण प्रस्तुत किया और कताई यज्ञ करते हुए उक्त वेदमंत्र का जप करन का विधान किया है। इस प्रकार सहज रूप में श्री भरतिया जी को राष्ट्रपिता के आशीर्वचन प्राप्त हो गये हैं।

भारतीय विदुषी महिलाएं अपने पतियों और पुत्रों की मगल-कामनाएं इस यज्ञ के माध्यम से किस प्रकार किया करती थीं पर भी इस पुस्तिका में प्रकाश डाला गया है। वर द्वारा वधू को विवाह के समय प्रथम प्रेमोपहार के रूप में 'चुनरी' का दिया जाना इसके विशेष महत्त्व पर प्रकाश डालती है जो कि परिवार की वृद्ध महिलाओं द्वारा कलात्मक रूप में काती और बुनी गयी होती है।

श्री भरतिया जी ने जिस लगन और निष्ठा के साथ इस पुस्तक की रचना की है उसके लिये मैं बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि स्वदेशी प्रेमी भाई बहिन इससे अपने कर्तव्य पालन के लिये प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

अन्त मे इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का मुझे अवसर मिला और ग्रामोद्योग मण्डल को इसके प्रकाशन का अधिकार प्राप्त हुआ इसके लिये मैं लेखक के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।

धर्म प्रकाश गुप्त
मंत्री

ग्रामोद्योग मण्डल
१५/२३९ सिविल लाइंस, कानपुर
गाँधी जयन्ती २ अक्टूबर १९७७

निवेदन

भारतवर्ष और संसार की आर्थिक प्रगति में खादी ने जो भाग लिया है वह किसी से छिपा नहीं है। बहुत दिन से इच्छा थी कि इस विषय पर पुस्तक लिखूं। ज्ञान की अनन्य राशि के रूप में वेद ने इस प्रसंग में भी सम्यक् प्रकाश डाला है। जब वेद के इस तथ्य को मैंने भाई जी श्री धर्मप्रकाश गुप्त मंत्री ग्रामोद्योग मण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया, उन्होंने मुझे प्रेरणा दी जिसका परिणाम यह पुस्तक है। पुस्तक पर प्रस्तावना लिख कर उन्होंने पुस्तक के गौरव को और भी बढ़ा दिया है। तदर्थ उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

सामग्री चयन करते समय जब लेखक की दृष्टि यंग इंडिया के २ जून १९२७ के अंक में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 'वेदों में चरखा' शीर्षक लेख पर पड़ी तो उसके हर्ष का पारावार न रहा। यह लेख 'खादी क्यों और कैसे' नामक पुस्तक से उद्धृत है। उसे अनुभव हुआ कि उसके विचारों का समर्थन राष्ट्रपिता ने भी किया है और उसे यह आशीर्वचन के रूप में प्रकाशित किया जाता है। नवजीवन ट्रेन्ट ट्रस्ट अहमदाबाद धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने लेख को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक का प्रूफ देखने के लिये मैं अपने पुराने शिष्य और सहाध्यायी प्राध्यापक श्री शिवबालक द्विवेदी एम० ए० तथा पुस्तक को लेखबद्ध करने के लिये नवीन शिष्य श्री ओम् शंकर मिश्र एम० ए० का ऋणी हूं। तदर्थ उन्हें भी साशीर्वाद धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में मैं ग्रामोद्योग मण्डल एवं उदय प्रिंटिंग प्रेस, सूटरगंज, कानपुर के प्रत्येक सदस्य को धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से पुस्तक का प्रकाशन और मुद्रण सम्भव हो सका।

कान्ति किशोर भरतिया

संस्कृत विभाग,
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर
गाँधी जयन्ती २ अक्टूबर १९७७

वेद और खादी

वेद सत्य ज्ञान की अप्रतिम राशि और संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम पुस्तक है। उनमें त्रिकाल सत्य सिद्धान्तों का ही समावेश है अर्थात् उनमें जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है वे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में सत्य हैं मानव जीवन के निर्वाह के निमित्त उनमें समस्त मौलिक सिद्धान्तों का सूक्ष्म एवं बीज रूप में समावेश है।

मानव सभ्यता के विकास के प्राचीनतम काल से ही मानव को अपना जीवन नियंत्रित एवं सुनियोजित बनाने के उद्देश्य से परम सुसंगठित आर्थिक व्यवस्था और समाज की आवश्यकता प्रतीत हुई। आदिम काल में ही मनुष्य ने अपने तन ढकने की इच्छा को अनुभव किया और अपने आर्थिक विकास में खादी एवं वस्त्र निर्माण को प्राथमिकता दी। इसमें सन्देह नहीं कि जो कार्य केवल आवश्यकता से प्रेरित होकर अनिवार्य रूप में किया जाता है उतना प्रभावोत्पादक नहीं होता जितना कि प्रेम, अनुराग और कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर किया गया निष्काम कर्म। एक माता या पत्नी अपने पुत्र अथवा पति की मंगलकामना से प्रेरित होकर अनेक दैनिक कृत्य सम्पन्न करती है जिनकी गणना इस श्रेणी में की जा सकती है। स्वयं सूत कातना और उससे स्वतः

कपड़ा बुन कर स्वयं धारण करना तथा आत्मीय जनों को धारण कराना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

इस सन्दर्भ में हमको खादी शब्द पर ही विचार करना आवश्यक है। यह शब्द ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर आया है। उनमें जितने भी शब्द आये सब अपने यौगिक अर्थ में ही हैं उस समय तक कोई अर्थ रूढ़ नहीं हुआ था। खादी शब्द खाद् धातु से निष्पन्न होता है जिससे खाद और खाद्य शब्द भी बनते हैं। वेद में खादी का अर्थ खाद्य या भोज्यपदार्थ ही है। जिस प्रकार भोजन शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक है उस ही प्रकार खादि के वस्त्र तन ढकने के लिये। एक माता का जितना कर्तव्य अपनी सन्तान के लिये दुग्ध पान कराना या भोजन करवाना है उतना ही वस्त्र निर्माण करके धारण करवाना भी।

खाद्य, भोज्य या सेव्य के रूप में खादि से तत्पर्य भिन्न-भिन्न प्रसंग में भिन्न हो सकता है। रणसंग्राम में अस्त्र-शस्त्र ही खादि हैं। रणसंग्राम[1] में मरुतों एवं मातृभूमि की रक्षार्थ सैनिकों की विशेष सज्जा का विधान है। उनको कन्धों पर खादि के रूप में आवश्यक खाद्य पदार्थ एवं अस्त्र-शस्त्र रणसंग्राम में ले जाने का

---

१. विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते॥
ऋग्वेद १।१६६।९

आदेश दिया गया है। उत्तम सेनापतियों[१] की कार्य प्रणाली और मर्यादा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि जैसे अकाश के विभिन्न भाग नक्षत्रों से प्रकाशित होते हैं उस ही भाँति सेनापति अपने ज्ञान और सैनिकों के कार्य से देदीप्त होते हैं। उन्हें रण-सग्राम में खादिनः अर्थात् सशस्त्र सेना एवं अन्य आवश्यक भोज्य एवं भोग्य पदार्थों की व्यवस्था करने वाला बताया है।

रणसंग्राम में सैनिक विभिन्न वेष धारण कर युद्ध के लिये अवतरित होता है। कंधों पर शस्त्र, वक्षःस्थल पर सुवर्णभूषण पैरों में खादि[२] धारण कर अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। यहाँ खादि से तात्पर्य जूते या पैर में धारण किये जाने वाले शस्त्र विशेष से हो सकता है। ऋग्वेद[३] में रणसंग्राम में सैनिक के भोग्य

१. द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्म वक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥
ऋग्वेद २।३४।२

२. अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षः सुरुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतोः गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितताः हिरण्ययीः ॥
ऋग्वेद ५।५४।११

३. अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षः सु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानः ॥
ऋग्वेद ७।५६।१३

पदार्थ अस्त्र-शस्त्र का भी खादी के रूप में अन्यत्र भी उल्लेख हुआ है और बताया गया है कि वक्ष:स्थल पर सुशोभन आभूषण एवं कंधों पर खादि अथवा अवसर के अनुरूप उपयोग्य अस्त्र-शस्त्र धारण कर सैनिक उस ही प्रकार देदीप्त होते हैं जैसे कि वर्षा काल में विद्युत् ।

प्रजा की उत्तम व्यवस्था करने वाले तेजस्वी राजा या नेता को अपने वश में रखना प्रजा का वैसे ही कर्तव्य है जैसे कि माता पिता का (खादिनं जातं शिशुं न)[1] सद्यः उत्पन्न हुए खाने वाले बालक को वश में रखना । यहाँ भी भोजन करने के अर्थ में खादि शब्द का प्रयोग हुआ है ।

रणसंग्राम में परस्पर खा जाने वाले[2] या नाश करने वाले शत्रुओं के अर्थ में भी खादी का प्रयोग हुआ है और बताया गया कि जिस प्रकार सूर्य अन्तरिक्ष में चमकता है या जलग्राही रश्मियों

---

१. आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।

विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ऋग्वेद ६।१६।४०

२. अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।

यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥

ऋग्वेद १०।३८।१

के असह्य होने पर विद्युत् देदीप्यमान होती है उस ही प्रकार रणसंग्राम में परस्पर खादि या सैनिक अपने इष्ट की पूर्ति के लिए देदीप्त होते हैं और रणसंग्राम में अवतरित होते हैं ।

इस प्रकार वेद में प्रमुख स्थलों पर प्रयुक्त होने वाले खादि का वर्णन किया । यह प्रायः अपने यौगिक अर्थ में ही आया है । शरीर के आन्तरिक भाग में आवश्यक अन्न के समान वस्त्र भी तन ढ़कने के लिये आवश्यक है अतः पश्चाद्वर्ती समय में यह स्वयम् निर्मित वस्त्र के लिये रूढ़ हो गया है ।

माताओं एवं पत्नियों का कर्तव्य है कि अपने पुत्र और पति के लिये वस्त्र न खरीदें अपितु स्वयं कातें और बुनकर पहिनावें । इस सन्दर्भ में ऋग्वेद का निम्नलिखित मंत्र विशेष रूप से विचारणीय है :—

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥

ऋग्वेद ५।४७।६

(मातरः) माताएँ जिस प्रकार (पुत्राय) अपने पुत्र को पहिनाने के लिये (वस्त्रा वयन्ति) वस्त्र का एक-एक तन्तु कातती और बुनती हैं । उस ही प्रकार (स्मे) इस पुत्र या अपनी सन्तान के कल्याण निमित्त (धियः) संकल्प विकल्प तथा (अपांसि) नाना प्रकार के उत्तम कर्म किया करें । माताओं के उत्तम कर्म, संकल्प तथा वात्सल्यमयी चेष्टाएँ संतान की रक्षा, पालन, पोषण, एवं

आदर्श चरित्र निर्माण में सक्षम होती हैं। इस ही प्रकार (वध्वः) उत्तम कुलीन वधुएँ (अस्मै) अपने पुत्र की समृद्धि कामना के निमित्त (वृष्णः उप प्रक्षे) वलवान् एवं शक्ति सम्पन्न पतियों के समीप आदर्श सुखोपभोग की कामना से (दिवः पथा) पूर्व प्रचलित आदर्श कल्याण मार्ग को अपनाती हुई (मोदमानः) प्रसन्नता का अनुभव करती हुई। (अच्छयन्ति) उन्हें प्राप्त करती हैं अर्थात पतियों की समृद्धि के लिये माताओं द्वारा अपनाई गयी परम्परा का पालन करती हैं। जिस प्रकार माताएँ पुत्र की समृद्धि के लिये सूत कातती और बुनती हैं पत्नियाँ उस ही प्रकार कात, बुन और वस्त्र निर्माण में सहायक हो पतियों के जीवन को प्रशस्त करती हैं।

इस प्रकार इस मंत्र में पुत्र और पति के प्रति माताओं और पत्नियों के सामान्य कर्तव्य का उत्तम रूप से निरूपण किया गया है। जब माता अथवा पत्नी स्वयं ही अपने पुत्र या पति के धारण करने के निमित्त स्वयं वस्त्र निर्माण करेगी उस समय उसके प्रत्येक तंतु से धारक को कितना बल और शक्ति प्राप्त हो सकेगी के सन्दर्भ में बताया गया है। और वस्त्र स्वयं निर्माण करने तथा धारण करने के प्रसंग में आदेश दिया गया।

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।

शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥

अथर्ववेद २।१३।३

(इदं वासः स्वस्तये परि अधिथाः) यह वस्त्र अपने कल्याण के लिये धारण करो (गृष्टीनां अभिशस्तिपाः उ अभूः) हे उस वस्त्र के धारक ! तू मनुष्यों को निश्चय विनाश से बचाने वाला हुआ है (पुरूची शरदः शतं च जीव) मानव जीवन की पूर्ण आयु सौ वर्ष पर्यन्त सुख पूर्वक जीवित रहो (रायः पोषं च उप सं व्ययस्व) तुम धन और पोषण का प्रतीक स्वरूप वस्त्र बुनो ।

वस्त्र घर से तैयार किया जावे जिसके निमित्तपरिवार का प्रत्येक सदस्य सूत कातने एवं कपड़ा बुनने में अपनी अवस्था और योग्यता के अनुरूप भाग ले । इस परम महत्त्वपूर्ण गृह उद्योग से चार लाभ होते हैं जिनका इस मंत्र में स्पष्ट रूप से संकेत किया गया है—

१. स्वस्ति—इदं वासः स्वस्तये अधि थाः

कपड़ा स्वस्ति के लिये धारण किया जाना आवश्यक है जिसका तात्पर्य ॐ उत्तम अस्तित्व है । स्थिति बनाने के निमित्त स्वयं कातना और बुना कपड़ा पहिनना आवश्यक है । दूसरे के बनाये हुए कपड़े से उत्तम स्थिति या स्वस्ति नहीं हो सकती अपितु उसकी दशा बिगड़ हीं सकती है । इस ही कारण स्वयं काता और बुना वस्त्र धारण करने का विधान है ।

२. विनाश से रक्षा—गृष्टीनां अधिशस्ति पा उ अभूः ।

यह वस्त्र मनुष्य मात्र की नाश से रक्षा का अमोघ उपाय है । मनुष्य वस्त्र का स्वयं निर्माण कर केवल आत्म लाभ ही नहीं करता अपितु समस्त मानव को विनाश से बचा लेता है । शारीरिक श्रम के अभाव में मनुष्य निरुद्यमी एवं आलसी हो जाता है ।

यह उद्योग बहुत थोड़ी सी पूंजी में सामान्य व्यक्ति के लिये भी आर्थिक उन्नति का द्वार खोल देता है जिससे छोटे से छोटे निर्धन व्यक्ति को भी अर्थलाभ हो सकता है। इस कारण स्वयं वस्त्र निर्माण के इस उद्योग को मनुष्य मात्र की रक्षा का अमोघ उपाय बताया गया है।

३. धन और पुष्टि—रायः च पोषं उप संव्ययस्व।

कपड़े का ताना ऐश्वर्य और बाना पुष्टि है। वह माता धन्य है जो अपने पुत्र के सांसारिक ऐश्वयं और पोषण के सूचक वस्त्रों का निर्माण कर स्वयं उसको पहिनाती है।

जिस परिवार में उत्तम शुभ कामना के साथ माता स्वयं वस्त्र निर्माण करती है उसकी किस प्रकार सहज उन्नति और समृद्धि हो सकती है की स्वयं कल्पना की जा सकती हैं।

४. दीर्घ आयु—शतं च जीव शरदः पुरूची

इस वस्त्र धारण से सौ वर्ष की आयु सरलता से प्राप्त होगी। वेद के ये वचन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। माता अपने शारीरिक श्रम के साथ-साथ अपनी सन्तान को आशीर्वाद भी देती है जो उसकी दीर्घायु का कारण भी हो सकता है। इस प्रकार घर में स्वयं बनाये हुए वस्त्रों को सर्वोत्तम बताया गया है।

कतिपय आधुनिक विज्ञानवेत्ता यह समझते हैं कि हाथ से काते हुए सूत का कपड़ा कुछ कठोर होता है और उसको धारण करने से शरीर में कोमलता नहीं आती जो मिल या मशीन से बने हुए कपड़े में होती है। हमारे देश के प्राचीन मनीषियों ने शरीर

को कठोर, दृढ़ एवं स्थिर बनाने का उपदेश दिया है जिससे दीर्घायु प्राप्त होती है। कोमलता इसमें बाधक हो सकती है।

माता-पिता जब बालक को प्रथम बार वस्त्र धारण करवाते हैं उसके लिये प्रथम वस्त्र परिधान का वेद में विशेष विधान किया गया है जिसके अनुसार इस अवसर पर बालक को वस्त्र धारण करवा कर पत्थर पर चढ़ाया जाता है और यह मंत्र बोला जाता है—

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्॥

अथर्ववेद २।१३।४

(एहि अश्मानम् आतिष्ठ) हे बालक, समीप आ और इस शिला पर चढ़। (ते तनूः अश्मा भवतु) तुम्हारा शरीर पत्थर सदृश स्थिर कठोर और दृढ़ बने। (विश्वे देवाः) समस्त देवता (ते आयुः शरदः शतं कृण्वन्तु) तेरी आयु सौ वर्ष पर्यन्त तक करें।

माता पिता द्वारा बालक के स्वास्थ्य और दृढ़ शरीर बनाने की आवश्यकता को इस मंत्र में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बताया गया है। माता पिता का कर्तव्य है कि ऐसा प्रयत्न करे कि बालक का शरीर कोमल न हो सके। अवस्था प्राप्त होने पर जब व्यक्ति को प्रथम वस्त्र परिधान के अवसर पर हुई इस शिलारोहण प्रक्रिया का ध्यान दिलवाया जावेगा तो वह योगाभ्यास, व्यायाम एवं अन्य साधनों से भी अपनी शारीरिक उन्नति के लिये प्रयत्नशील

होगा। स्वयं निर्मित वस्त्रों का धारण करना भी इस शारीरिक उन्नति के साधनों में अपना उचित स्थान रखेंगे। शिलारोहण की प्रक्रिया यह भी द्योतित करती है कि प्रथम वस्त्र परिधान के अवसर पर बालक की आयु ३, ४ वर्ष की अवश्य होगी क्योंकि इस ही आयु में उसमें शिलारोहण की शक्ति आती है चाहे वह किसी के अवलम्बन से ही चढ़ता होगा। 'अश्मनं तिष्ठ' वाक्य उसके जीवन को पाषाण के समान दृढ़ और मंगलमय बनाने की कामना से कहा जाता है।

इस वस्त्रधारण के अवसर पर जो अन्तिम आशीर्वाद प्रदान किया जाता है वह भी विशेष रूप से विचारणीय है :

यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वे वन्तु देवाः।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम्॥

अथर्ववेद २।१३।५

जिसके तेरे लिये प्रथम बार धारण करने योग्य वस्त्र को हम उपस्थित करते हैं उसके माध्यम से समस्त देवता एवं विद्वान् तुम्हारी उत्तम ढंग से रक्षा करें। उस उत्तम प्रकार से जन्म प्राप्त हुए तुम्हारा अनुसरण करते हुए तुम्हारे अनन्तर बहुत भाई उत्पन्न हों।

यह मंत्र जहाँ एक ओर यह कामना करता है कि वस्त्र के माध्यम से बालक को ओज और बल प्राप्त होगा। जिसके प्रतीक स्वरूप देवता भी उसकी रक्षा करेंगे, दूसरी ओर एक निश्चित

अवधि के अनन्तर ही सन्तान उत्पत्ति करने के महत्त्व पर भी बल देता है। उस समय दिए हुए आशीर्वाद के अनुसार जैसे यह बालक हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी बनता हुआ बढ़ता है उस ही प्रकार के इसके पीछे भाई भी उत्पन्न हों, यह कामना की गयी है। यदि इस आशीर्वाद के प्राप्त होने की आयु ३ या ४ वर्ष मान ली जावे तो दो सन्तानों में होने वाला अन्तर ४ या ५ वर्ष माना जा सकता है।

इस मंत्र पर विचार करने से कुछ और तथ्य भी प्रकाश में आते हैं जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है—

१. बालक के ३ या ४ वर्ष की आयु होने पर प्रथम वस्त्र परिधान होता है जिससे सिद्ध होता है कि उस समय बहुत थोड़े वस्त्र धारण होते थे।

२ बालक को पत्थर पर चढ़ा कर खड़ा करना और उसके सतत वर्धनशील और पाषाण के समान स्थिर होने की कामना करना।

३. आशीर्वाद देना और दो सन्तानों के मध्य ४, ५, वर्ष के सिद्धान्त का विधिवत् प्रतिपादन करना।

इस प्रकार इन मंत्रों में पुत्र के प्रति माता के कर्त्तव्यों का विवेचन हुआ है जिनमें शरीर को ढ़कने के लिये बनाए गये वस्त्रों महत्त्व का उल्लेख है। जैसे माता पुत्र की कल्याण कामना के लिये सदा उद्यत रहती है उस ही प्रकार पति का भी कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नी की प्रत्येक आवश्यकता की यथासम्भव पूर्ति करे। पति और उसके अन्य गुरुजनों का अनिवार्य कर्त्तव्य है कि पत्नी की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकता कभी अपूर्ण न रहने दे।

इस सन्दर्भ में अथर्ववेद की एक वैवाहिक प्रथा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। कन्या के पिता द्वारा कन्यादान सम्पन्न करने के अनन्तर तत्काल ही वर अपने पक्ष की ओढ़नी या चुन्दरी स्वयम् वधू को उढ़ाता है और उसे सम्बोधित कर यह मंत्र बोलता है—

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तां अभितोऽददन्त ।

तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥

अथर्व० १४।१।४५

(याः देवीः अकृन्तन्) मेरे परिवार की जिन वृद्धा माताओं ने यह सूत काता है, (या च अवयन्) जिन देवियों ने बुना है, (याः च तत्निरे) जो ताना तानती हैं, (या च अभितः अन्तान् अददन्त) तथा जो चारों अन्तिम भागों को यथावत् गिलाकर ठीक करती हैं। (ताः त्वा जरसे सं व्ययन्तु) वे वृद्धावस्था पर्यन्त तुम्हारे निर्वाह के लिये इस ही प्रकार तुम्हारे लिये वस्त्र बनाती रहें। (आयुष्मती इदं वासः परिधत्स्व।) हे दीर्घजीवन की कामना करने वाली प्रियतमे उनके प्रेम के प्रतीक रूप इस वस्त्र को धारण करो।

वर वधू को विवाह के अवसर पर जो प्रथम उपहार प्रदान करता है वह उसकी माताओं और पूज्य देवियों द्वारा निर्मित वस्त्र ही है जिसका इस मंत्र में वर्णन है। उसे कुलीन महिलाओं ने स्वयम् काता है, बुना है, ताना फैलाकर चारों कोनों को यथावत्

उत्तम ढग से सावधानी पूर्वक सजाया है। यह वस्त्र दान कर वर यह भी कामना करता है कि उसकी माताएँ सदा ही इस ही प्रकार वृद्धावस्था पर्यन्त मंगलकामना का प्रतीक वस्त्र निर्माण और प्रदान करती रहें। इस ही अ शा और विश्वास के साथ वह अपने जीवन साथी को प्रथम भेंट प्रदान करता है। भारतीय समाज में यह विधान अद्यावधि प्रचलित है।

वस्त्र निर्माण में महिलाओं का योगदान

सभ्यता के विकास के प्राचीनतम काल से ही महिलाओं और पुरुषों में कार्य का विभाजन हुआ है और महिलाओं के लिए घर का प्रबन्ध करना आवश्यक बताया गया है। वस्त्र विर्माण और परिवार के सब सदस्यों के लिये कपड़ा पहिनाने की व्यवस्था करना उनका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य रहा है। दो महिलाएँ मिलकर पृथक्-पृथक् और मिलकर इस राष्ट्र के लिये परमहितैषी सार्वजनिक कार्य में अपना योगदान देती थीं का वर्णन करते हुए बताया गया है :

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्।

प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम्॥

अथर्व० १०।७।४२

(एके विरूपे युवती) भिन्न-भिन्न रंगरूप धारण करने वाली महिलाएं अलग-अलग क्रमशः (षण्मयूखं तत्रं अभ्याक्रामं) छः खूंटे वाले ताने के समीप आती हैं तथा (अन्या) उनमें से एक

(तंतून् प्रातंरते) सूत्रों को खींचती है और (अन्या धत्तो) दूसरी सूत को रखती है इस प्रकार उन दोनों में किसी का (न अपवृञ्जाते) भी काम खराब नहीं होता है अपितु वे निरन्तर अपने कर्तव्य में लगी हुई विश्राम करती हैं अथवा अपने कार्य को 'न अन्तं गमातः) समाप्त करती हैं।

वस्त्र की व्यवस्था करना प्रत्येक राष्ट्र में सर्वाधिक महत्त्व का कार्य है अतः महिलाओं का भी कर्तव्य है कि अपने इस कार्य में अनवरुद्ध रूप से क्रियाशील रहें जिसका इस मंत्र में वर्णन किया गया है। ताने का छः खूंटियों वाले होने का वर्णन करना अथर्ववेद के काल में भी इस कला के विकास की द्योतक है—

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात्।

पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके॥

अथर्व० १०।७।४३

(तयोः परि नृत्यन्त्योः इव) नर्तकी के समान व्यवहार करने वाली उन दो महिलाओं में से (यतरा परस्तात्) कौन सी पहिली और कौन दूसरी है, यह (अहं न विजानामि) मैं नहीं जानता। इसके अतिरिक्त (पुनाम् एवं वयति) एक मनुष्य इसको बुनता है तथा दूसरा (पुमान् एनत् उद्गृणत्ति) पुरुष इसको ताने से पृथक् करता है और तीसरा पुमान् एनत् नाके अधि विजभार) मनुष्य वस्त्र बन जाने पर या सुख प्राप्त होने पर उत्तम स्थान पर फैलाता है।

इस मंत्र में खादी निर्माण विधि के विकास और उसमें होने वाली प्रगति का सम्यक् विवेचन है। पहिले मंत्र में बताया गया है कि एक महिला ताने के समीप आती है और दूसरी इसे खींचती है। वस्त्र निर्माण में उन दोनों की नर्तकी से तुलना की गयी है। किसने कार्य पहिले आरम्भ किया है कह सकना कठिन है क्योंकि निर्माण कार्य में इन दोनों का कार्य अन्योन्याश्रित है और अनवरुद्ध होता है। एक मनुष्य वस्त्र बुनता है, दूसरा पृथक् करता है और तीसरा उत्तम स्थान पर ले जाता है बताकर भी वेद ने वस्त्रनिर्माण पद्धति में कार्यविभाजन का सूक्ष्म निरूपण किया है।

खादी तथा वस्त्र निर्माण में सीसे तथा अन्य धातुओं का प्रयोग

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऽ ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।

अश्विना यज्ञं सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥

यजु० १९।८०

जैसे (मनीषिणः) मननशील (कवयः) विद्वान् (मनसा) विचारपूर्वक (सीसेन) सीसे या लोहे के यंत्रों द्वारा (ऊर्णा-सूत्रेण) ऊन के बने हुए कम्बल (तंत्रं) कुटुम्ब के भरण पोषणार्थ (वयन्ति) बुनते हैं (सविता) उत्तम व्यवहार शील पुरुष और (सरस्वती) उत्तम विदुषी महिला (ह अश्विना) दोनों संयुक्त रूप से गृहस्थ धर्म पालन करते हुए दम्पती के रूप में (यज्ञां) उत्तम

व्यवहार करते हैं, जैसे (भिषज्यन्) चिकित्सा की अभिलाषा करता हुआ (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (इन्द्रस्य रूपम्) श्रेष्ठ स्वरूप का विधान करता है उस ही प्रकार समस्त मानवमात्र का कर्तव्य है कि प्रगति में अग्रसर रहे।

इस मंत्र में कुटुम्ब भरणार्थ कम्बल बुनने वाले व्यक्ति की साधारण बुनकर नहीं अपितु मननशील विद्वान् संज्ञा दी गयी है। कम्बल बुनने वाले विद्वान् गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए दम्पती, चिकित्सा करने वाले विद्वान् चिकित्सक के उदाहरण से मानवमात्र को प्रगति करने की प्रेरणा दी गयी है। मंत्र में सीस से तात्पर्य सीसा, लोहा या ऊन बुनने में प्रयुक्त होने वाली किसी अन्य धातु से हो सकता है। यह मंत्र यह भी द्योतित करता है कि ऊन कातना और बुनना उस समय एक आदर्श कृत्य समझा जाता था।

महिलाओं का वस्त्रनिर्माण में योगदान

उषासानक्त बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्।

तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे॥

यजु० २०।४१

(बृहती महान् पयस्वती सुदुघे) उत्तम दूध देने वाली गौवों के सदृश (सुरुक्मेः) तेजस्विनी ऊषा (सानक्ता) ऊषा और रात्रि ये दो महिलाएं (पेशसा ततं तन्तुं) उत्तम रंगों के साथ विस्तीर्ण हुए

ताने पर (संवयन्ती) उत्तम रंगों से कपड़ा बुनती हुई (देवानां देवं) देवों के देव महान् (इदम्) प्रभु की अथवा देव विद्वानों के लिए भी दिव्य कार्य सम्पन्न करने वाली महान् जनता की (यजतः) पूजा करती है।

इस मन्त्र में उत्तम रंग के ताने पर कपड़ा बुनती हुई दो महिलाओं की ऊषा एवं रात्रि से तुलना की गयी है। दैवी सृष्टि में ऊषा और रात्रि का जो परम्परागत साहचर्य दृष्टिगोचर होता है। वही इस कपड़ा बुनने के काय में लगी दो महिलाओं का है अर्थात् जितना सतत साहचर्य ऊषा रात्रि में दृष्टिगोचर होता है उतना ही इस व्यवसाय मे लगी महिलाओं का होना चाहिए। उनको उत्तम दूध देने वाली गौओं के समान बताया है जिससे सिद्ध होता है कि उनका भी सामाजिक दायित्व गांवों के सदृश महान् परोपकारमय माना गया है वे दोनों महिलाएँ कपड़ा बुनती हुई परमेश्वर की उपासना करती ही हैं और साथ-साथ सामान्यजन की भी महती उपकारिणी होती हैं जिन्हें प्रायः आधुनिक समाजवादी प्रभु का सामाजिक रूप बताते हैं।

ये अन्ता यावती: सिचो य ओतवो ये च तन्तवः।

वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात्॥

अथर्व० १४।२।५१

(ये अन्ता) जो वस्त्र के अन्तिम भाग हैं (यावतीः सिचः) जो किनारियाँ हैं, (य ओतवः) जो वाने हैं तथा (ये च तन्तवः) जो ताने हैं तथा इन सबके मध्य में (यत्पत्नीभिः उतं वासः) जो

पत्नियों के द्वारा बुना हुआ वस्त्र है (तत्) वह वस्त्र हमारे लिए सुखदायक हो।

इस मन्त्र में खादी या स्वयं निर्मित वस्त्र के विभिन्न भेदों एवं प्रकारों का वर्णन किया गया है वस्त्र के अन्तिम भाग किनारियाँ बाना—ताना तथा अन्य उपभेद बताये गये हैं इन समस्त वस्त्रों में वह वस्त्र सर्वोत्तम बताया गया है जो पत्नी के द्वारा बुना गया है।

इस प्रकार इस मन्त्र में एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का निरूपण कर दिया गया है। माता अथवा पत्नी के बनाये हुए किसी भी पदार्थ में पुत्र एवं पति को जो प्रेम और आत्मीयता प्राप्त होती है अन्यत्र किसी मूल्य में प्राप्त नहीं हो सकती। इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए पत्नी द्वारा बुने वस्त्र को पति के लिए सर्वोत्तम बताया है और उसको परम सुखदायक होने की कामना की गयी है। साथ-साथ वस्त्र निर्माण की विभिन्न प्रक्रियों का निरूपण करके यह भी घोषित किया है कि वैदिक काल में न केवल पुरुष ही अपितु महिलायें भी वस्त्र निर्माण में परम प्रवीण होती थीं।

आधुनिक काल में हाथ के बुने और कते हुए वस्त्र के सम्बन्ध में यह प्रायः सामान्य धारणा बन गयी है कि वह इतना सुन्दर और टिकाऊ नहीं होता जितना कि मिल का वस्त्र होता है। इस कारण मिल के और विदेशी वस्त्र के समान उसे आदर प्राप्त नहीं होता। अथर्ववेद में विवाह के अवसर पर वधू को हाथ के कते और बुने वस्त्र देने का ही विधान है। वे कैसे होते थे और

किस रूप में वधू की भावी साज सज्जा में सहायक होते थे का वर्णन करते हुए कहा गया है–

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥

अथर्व० १४।१।२८

(आशसनं विशसनं) धारीदार वस्त्र, शिर का वस्त्र तथा (अथोअधिविकर्तनं) और समस्त अंगों को आच्छादित करने वाला वस्त्र तीन प्रकार के वस्त्र धारण किये जा सकते हैं। इनको धारण करने वाली (सूर्यायाः रूपाणि पश्य) सूर्य के तेजस्विगुणों से उपेत नव वधू की साज सज्जा को देखो। (उत तानि ब्रह्म शुम्भति) ब्राह्मण इनको अपने प्रताप और कीर्ति से तेजस्वी बनाता है।

इस मंत्र पर विचार करने से प्रकट होता है कि एक वस्त्र धारीदार होता है, दूसरा दुशाले जैसा चमकदार होता है, तीसरा वस्त्र चुंदरी या ओढ़ने के रूप में प्रयुक्त होता है। इन तीनों प्रकार के वस्त्रों से वधू के रूप में सुन्दरता लायी जा सकती है। ब्राह्मण ज्ञानियों का कर्तव्य है कि इन वस्त्रों का ज्ञान सम्यक् रूप से गृहस्थों को प्रदान करे जिससे वस्त्रों में उत्पन्न दोषों को दूर किया जा सके और नव वधू को उसके गौरव के अनुसार सुशोभित किया जा सके।

हाथ के वस्त्र में महीन कारीगरी हो सकती है और वह मनोबल भी प्रदान कर सकता है। इस ही कारण वस्त्र के दोष दूर करने में विद्वान् एवं ज्ञानियों के सहयोग की कामना की गयी

है जो अपने भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा भी समष्टि का मंगल कर सकते हैं।

वैदिक कर्मकाण्ड में दान का भी विशेष महत्त्व है। कोई भी सामाजिक कृत्य उस समय तक सफल नहीं समझा जाता जब तक कि उसमें विधिवत् दान न किया जावे। इस दान से अनेक भावी अनिष्ट भी दूर हो सकते हैं। विवाह के अवसर पर ब्राह्मणों एवं विद्वानों को प्रदान किया हुआ धन एवं वस्त्र वधू के चरित्र की किस प्रकार रक्षा कर सकता है के सन्दर्भ में निम्नलिखित मंत्र विचारणीय है—

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम्॥

अथर्व० १४।१।२५

(एषा पद्वती) जब यह पांववाली अर्थात् चंचल स्वभाव धारण करने पर (कृत्या जाया भूत्वा) विनाशकारिणी स्वभाववाली पत्नी बनकर (पतिं विशते) पति के समीप जाती है उस समय (ब्रह्मभ्यः वसु भज) उस समय ब्राह्मणों को धन प्रदान करे (शामुल्यं परा देहि) एवं उत्तम वस्त्र भेंट करे।

किसी परिस्थिति में पत्नी अनुचित व्यवहार कर पति के वंश की मर्यादा का नाश भी कर सकती है। ब्राह्मणों एवं विद्वानों को उचित धन एवं वस्त्र प्रदान करने से इस मर्यादा की रक्षा का उपाय बताया है। यदि मनोबल के प्रतीक उत्तम वस्त्र हस्त निर्मित

खादी वस्त्र विद्वानों को प्रदान किया जावे तो निश्चय ही वधू और अन्य कुटुम्बियों को शक्ति प्राप्त होगी और उनके चरित्र और मर्यादा की रक्षा की जा सकेगी।

ब्राह्मणों एवं विद्वानों को विवाह के अवसर पर प्रदान किया हुआ धन और वस्त्र कितना उपयोगी होता है और वधू का वस्त्र दान दिये जाने पर कितना प्रभावी होता है के सन्दर्भ में बताया गया है।

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम्।

यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति॥

अथर्व० १४।२।४१

(देवैर्दत्तं) देवताओं एवं ब्राह्मणों के द्वारा प्रदान किया हुआ (मनुना साकं) मनु के साथ प्राप्त हुआ (एतत् वाधूयं वस्त्रं) यह विवाह के अवसर पर प्रयुक्त वस्त्र एवं (वध्वः च वस्त्रं) जो वधू का वस्त्र है, (यः चिकितुषे ब्रह्मणे ददाति) जो ज्ञानी विद्वान् एवं ब्राह्मण को प्रदान करता है (सः इत तल्पानि रक्षांसि हन्ति) वह निश्चय ही बिस्तरे पर रहने वाले राक्षसों का नाश करता है।

वधू के लिये विवाह के अवसर पर बनाए गये वस्त्र यदि ब्राह्मणों को प्रदान किये जावें तो शयन स्थान पर उत्पन्न हुए दूषित संस्कार दूर किये जा सकते हैं। यह मंत्र भी मनोबल और इच्छा शक्ति का द्योतक है।

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।

युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥
अथर्व० १४।२।४२

(बृहस्पते साकमिन्द्र) हे बृहस्पति और साथ रहने वाले इन्द्र ! तुम दोनों (वधूयो वाधूयं वासः) वधू का विवाह के समय का वस्त्र और (वध्वः च वस्त्रं) एवं वधू के नित्य धारण का वस्त्र (यं ब्रह्मभागं मे दत्तः) जिसको ब्राह्मण के भाग के रूप में तुम दोनों मुझको प्रदान करते हो (युवां ब्रह्मणे ऽ नुमन्यमानौ) तुम दोनों उसे ब्राह्मण को प्रदान करने की अनुमति प्रदान करते हुए (ब्रह्मणे दत्तम्) मानो साक्षात् ब्राह्मणों को ही प्रदान करते हो ।

इस प्रकार इन दोनों मंत्रों में विवाह के समय वधू के वस्त्रों का विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण के प्रति दान का विधान है । यह दान अत्यन्त आवश्यक माना गया है जिससे दाता को अनेक लाभ हो सकते हैं । मननशील विद्वानों ने इस प्रथा को आरम्भ किया है जिसका यथावत् पालन करना आवश्यक है ।

ऋग्वेद के एक मंत्र में वस्त्र बुनने और कातने के सम्बन्ध में सात उत्तम उपदेश दिये गये हैं । ये मंत्र वेद के प्रत्येक विद्यार्थी और वैदिक सभ्यता के प्रेमी के लिये विशेष रूप से विचारणीय है । मंत्र निम्नलिखित है—

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।

अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥

ऋ० १०।५३।६

(तन्तुं तन्वन्) सूत कात कर (रजसः भानुमन्विह) उस पर तेज या गाढ़ा रंग चढ़ाओ (अनुल्बणं वयत) उससे कपड़ा बुनो और सूत को गठीला न बनाते हुए सावधानी से सीधा करो। (धियः कृतान् ज्योतिष्मतः पथो रक्ष) बुद्धिपूर्वक तेजस्वी ज्ञानियों के मार्ग की रक्षा करो अर्थात् जिस प्रकार ज्ञानी तेजस्वी सावधानी से वस्त्र बुनते आये हैं उनके मार्ग का अनुसरण कर वस्त्र बुनने में कभी प्रमाद न करो। (मनुः भव मननशील बनो (दैव्यं जनं जनय) दिव्य प्रजा को उत्पन्न करो (जोगुवां अपः) ये कवियों अर्थात् विद्वान् तेजस्वियों के काम हैं।

इस प्रकार इस मंत्र में हमको ये सात शिक्षाएं प्राप्त होती हैं— १—सूत कातो। २—उस पर गाढ़ा रंग चढ़ाओ। ३—तदनन्तर इस प्रकार सावधानी से बुनो कि सूत गठीला न हो अपितु सीधा ही रहे। ४—पूर्व काल में हमारे तेजस्वी पूर्वजों ने इस सन्दर्भ में जिस परम्परा का आरम्भ किया है उसका सम्यक् निर्वाह करो। ५—मननशील बनो। ६—उत्तम प्रजा उत्पन्न करो अर्थात् इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करो कि तुम्हारे बाद भी तुम्हारे वंशज इस परम्परा का निर्वाह करें। ७—ये सब कवियों ज्ञानियों या आदर्श पुरुषों के ही काम हैं।

कताई यंत्र में नाना प्रकार के शताधिक कलाकार द का सहयोग--

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥
ऋ० १०।१३०।१

(यः यज्ञः) जो यह कताई यज्ञ (विश्वतः तन्तुभिः ततः) सब ओर से तन्तुओं के धागे के कर्म से व्याप्त है (देवकर्मेभिः) देवताओं को लक्ष्य करके अथवा सर्वत्र विकीर्ण सामान्य जन के हित के निमित्त (एकशतं आयतः) एक सौ कलाकार इस कर्म में संलग्न है। यह उपलक्षण भी हो सकता है जिसका तात्पर्य असंख्य कलाकारों के इस कताई बुनाई में संलग्न होने का हो सकता है (ये पितरः) जो पालक ज्ञानी विद्वान् पूर्वज (इमे वयन्ति) इन धागों को बुनकर उत्तम वस्त्र का रूप देते हैं और (ते) इस प्रकार वे इस वस्त्र निर्माण के प्रति (प्रवय अप वय इति आसते) ऊपर से बुनो, नीचे से बुनो इस प्रकार उपदेश देते हैं।

परमपिता परमेश्वर के संरक्षण में सचालित ज्ञानमय इस ब्रह्माण्डयज्ञ में इस मंत्र का तात्पर्य यह होगा—

(यः यज्ञः) जो परमेश्वर का महान् ज्ञानमय ब्रह्माण्ड यज्ञ (विश्वतः तन्तुभिः ततः) सब ओर प्रकृति नर्मित तन्तुओं या विस्तृत तत्त्वों से व्याप्त है, वह (दिव्य कर्मेभिः एकशतं आयतः) दिव्य अग्नि, जल, आकाश, वायु, पृथ्वी आदि पंचभूतों के संयोग

से (एकशतंआयत:) सैकड़ों वर्ष या दीर्घकाल तक विद्यमान रहता है अथवा सैकड़ों या असंख्य प्रकार की परमेश्वर की शक्तियाँ उसका संचालन करती हैं (पितरः वयन्ति) पूर्वज या ज्ञानी जन परम्परा रूप में इसका संचालन या विधान करते हैं (तते) इस विस्तृत ज्ञान यज्ञ के सम्बन्ध में हमारा कर्तव्य है कि जगत् सर्ग रूप वस्त्र को (प्र वय अप वय इति आसते) ऊपर को बुने और नीचे को बुने अर्थात् जिस प्रकार का व्यवहार और व्यवस्था पूर्व काल में हुई थी उसको अपनाते हुए भविष्य में भी अनुसरण करे।

इस मंत्र में चरखा या कताई यज्ञ की ब्रह्माण्ड में सृष्टि निर्माण रूपी यज्ञ से तुलना कीं गयी है और बताया गया है कि जिस प्रकार सृष्टि का प्रवाह अनादि और अनन्त है उस ही प्रकार वस्त्र निर्माण के कार्य को भी महत्त्व देना चाहिये।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने २ जून १९२७ ई० के यग इण्डिया में प्रकाशित "वेदों में चरखा" शीर्षक लेख में इस मत्र का उल्लेख किया है।

यह लेख पुस्तक के आरम्भ में आशीर्वचन में लिखा है। पुनः इसी प्रसंग में अगले मंत्र में खादी की निर्माण विधि में दो पुरुषों के सहयोग का वर्णन है। उनमें से एक ताने को फैलाता है और दूसरा बुनता है।

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन्।

इमे मयूखा उप सेवुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥

ऋ० १०।१३०।२

(पुमान् एनं तनुते) एक मनुष्य इस ताने को फैलाता है (पुमान् उत्कृणत्ति) दूसरा मनुष्य बाने को खोलता है, इस प्रकार (अस्मिन् नाके) इस सुखदायक स्थान पर (वितत्ने) विशेष प्रकार से सूत फैलाया जाता है। (इमे मयूखाः) ये खूटियां हैं जो (सदः उपखेदुः ऊ) बुनने के स्थान पर लगायी गई हैं। (सामःनि तसराणि) सुखदायक नाले घड़कियां भी विद्यमान हैं जो (ओतवे चकुः) बाने के लिये बनाई गई है।

खादी बुनने में ताने और बाने का प्रयोग होता है। पूर्वोक्त मंत्र में इस सन्दर्भ में इतना विशद विवेचन कर दिया गया है जिससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद के काल में यह कला अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच गयी थी।



